न्यायिक पुनरावलोकन

Class Notes/Study Material

Class Timing: 8 am- 11 am

70th & 71th BPSC GS P- 2 Mains 2024-25

By: Santosh Kashyap Sir

Bihar Naman GS

3rd Floor, A. K. Pandey Building, Road No.- 2, Rajendra Nagar, Near Dinkar Golambar, Patna – 800016

अर्थ परिभाषा एवं महत्व

न्यायिक पुनरावलोकन का अर्थ है किसी भी निर्णय की समीक्षा करना। न्यायिक पुनरावलोकन का उन देशों में काफी महत्व है जहाँ पर लिखित संविधान है क्योंकि उन देशों मे सीमित सरकार की अवधारणा लागू होती है। न्यायिक पुनरावलोकन इस अर्थ मे माना जाता है कि इससे किसी विधायिका की शक्तियों की मान्यता कहाँ तक उचित है तथा सरकार के कार्यों की वैधता कहाँ तक है। विशेषकर संविधान के प्रावधानों के अनुरूप सरकार के कार्य संपन्न हो रहे हैं या नहीं इन सब कारणों के लिए न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्तियाँ दी गयी है।

अमेरिका के न्यायधीश मारबरी मार्शल ने न्यायिक पुनरावलोकन को परिभाषित करते हुए कहा है-"यह न्यायालय की ऐसी शक्ति है जिसमें यह किसी कानूनी या सरकासरी कार्य को असंवैधानिक घोषित कर सकती है जिसे यह देश की मूल विधि या संविधान के विरुद्ध समझती है।"

न्यायिक पुनरावलोकन न्यायालयों की वह शक्ति है जिसके द्वारा वे कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों की संविधानिकता जाँचते हैं और यदि वे कानून संविधान के विपरीत पाए जाएं तो असंवैधानिक घोषित किए जा सकते हैं।

न्यायिक पुनरावलोकन की उत्पत्ति व विकास

सबसे पहले ब्रिटेन में कानून की व्याख्या करने वाली स्वतन्त्र न्यायपालिका के विचार की जानकारी प्राप्त होती है। यद्यपि न्यायिक पुनरावलोकन की उत्पत्ति को अमेरिका से सम्बन्धित किया जाता है, लेकिन इसके प्रामाणिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। सबसे पहले इंग्लैण्ड की प्रिवी कौंसिल को यह अधिकार प्राप्त हुआ था। इस परिषद को सर्वोच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों का अवलोकन करने व रद्द करने का अधिकार प्राप्त था। पिनॉक व स्मिथ ने इसकी उत्पत्ति ब्रिटेन में ही मानी है। अमेरिका का संविधान न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था करने में असमर्थ है। वहां पर अप्रत्यक्ष रूप से ही इसकी व्यवस्था है।

1803 कें मारबरी बनाम मेडिसन के मुकद्दमे में न्यायधीश मार्शल ने ही न्यायिक पुनरावलोकन को परिभाषित किया था। उसके बाद न्यायधीश मार्शल ने भी अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति को प्रतिपादित किया। इन दोनों न्यायधीशों ने इसे कानून की वैधानिकता जांचने की महत्वपूर्ण कसौटी स्वीकार किया। उपरोक्त वाद-विवाद के बाद निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चाहे इसकी उत्पत्ति ब्रिटेन में ही हुई हो, लेकिन एक व्यवस्थित विचार के रूप में इसके दर्शन सर्वप्रथम अमेरिका में ही होते हैं। आज न्यायिक पुनरावलोकन का सिद्धान्त भारत व अन्य संघात्मक राज्यों में महत्वपूर्ण स्थान बन चुका है।

भारत में न्यायिक पुनरावलोकन

भारतीय संविधान में ब्रिटिश संविधान की तरह न तो संसद को सर्वोच्च बनाया गया है और न ही अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की तरह न्यायिक निरंकुशता की परम्परा को विकसित किया है। भारतीय संविधान में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था संविधानिक कानूनों की व्याख्या तक ही सीमित रखी गई है। इसका कानून की औचित्यता से कोई सरोकार नहीं है। कानून की उचित प्रक्रिया के स्थान पर वह कानून द्वारा स्थापित पद्धति को स्वीकार सर्वोच्च न्यायालय को संविधान कि अनुरूप ही कार्य करने को बाध्य किया गया है। यदि सर्वोच्च न्यायालय को अमेरिका की तरह कानून की

उचित प्रक्रिया पर आधारित किया गया होता तो वह तानाशाही का प्रतिबिम्ब बनकर सरकार के संचालन में गतिरोध उत्पन्न कर सकता था। भारत में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था को सीमित व लिखित रूप में सर्वोच्च बनाया गया है। यद्यपि न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था सम्बन्धी कोई भी विशेष उपबन्ध नहीं है, लेकिन न्यायपालिका की सर्वोच्चता में यह सिद्धान्त स्वयं निहित है।

संविधान का अनुच्छेद 368 संविधान को सर्वोच्च बना देता है। इस सर्वोच्चता के कारण सर्वोच्च न्यायालय के विरुद्ध कानून बनाते हैं, तो उसे असंवैधानिक घोषित करना सर्वोच्च न्यायालय का प्रमुख अधिकार है। यद्यपि गोलकनाथ मामले में सरकार व सर्वोच्च न्यायालय में सरकार व न्यायालय के बीच गतिरोध उत्पन्न हो गया था जिसे संविधान में संशोधन करके जल्दी ही दूर कर लिया गया। आज भारत का सर्वोच्च न्यायालय मर्यादित तरीके से अपनी इस शक्ति का प्रयोग कर रहा है।

भारत में न्यायिक पुनरावलोकन की संविधानिक व्यवस्था

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 12(2) में इस बात का उल्लेख किया गया है कि राज्य ऐसा कोई कानून नहीं बना सकता जो मौलिक अधिकारों के विरुद्ध जाता हो। इस आधार पर सर्वोच्च न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त हो जाती है कि राज्य के कार्यों को अनुच्छेद 13 (2) के आधार पर जांच सकता है। 1971 तक वह व्यवस्था प्रभावी रही। लेकिन 1971 में 24 वां संविधान संशोधन करके अनुच्छेद 13 के खण्ड (3) के बाद खण्ड (4) जोड़ दी। इसमें कहा गया कि इस अनुच्छेद की बात अनुच्छेद 368 पर लागू नहीं होगी। इससे यह विवाद समाप्त हो गया कि संसद मौलिक अधिकारों में परिवर्तन कर सकती है या नहीं। 1973 में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में संविधानिक संशोधन की वैधता को स्वीकार कर लिया और संसद व सर्वोच्च न्यायालय का गतिरोध समाप्त हो गया जो गतिरोध इस बात पर था कि संसद को मौलिक अधिकारों में परिवर्तन करने का अधिकार है या नहीं। सर्वोच्च न्यायालय ने 1967 में गोलकनाथ के केस में अपने 1952 व 1965 के मामलों में दिए गए संसद के अधिकार की वैधता को उलट दिया। अब उसने निर्णय दिया कि संसद संशोधन तो कर सकती है, लेकिन मौलिक ढांचे में नहीं।

इस प्रकार 1973 तक यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो गई संसद को मौलिक ढांचे में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। इसी तरह अनुच्छेद 32 भी संविधानिक उपचारों के अधिकार के रूप में सर्वोच्च न्यायालय को यह शक्ति देता है कि उसे यह देखने का अधिकार है कि क्या कहीं पर मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण तो नहीं हुआ है। संविधान के अनुच्छेद 131 एवं 132 भी सर्वोच्च न्यायालय को संघीय व राज्य सरकारों द्वारा निर्मित कानूनों के पुनरावलोकन का अधिकार देते हैं। इनकी तरह सर्वोच्च न्यायालय का प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार तथा अपीलीय क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत कानून की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 246 भी न्यायिक पुनरावलोकन को दर्शाता है। इसके अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त है कि यदि संघ और राज्य अपने-अपने क्षेत्रों में कानून बनाते समय संविधान की मर्यादा का अतिक्रमण करें तो उच्चतम न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग करे, उसे असंवैधानिक घोषित करने का अधिकार है। 42 वें संविधानिक संशोधन द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक समीक्षा की शक्ति की स्पष्ट व्याख्या की गई है। इसके द्वारा भारतीय संविधान में 13.। नया अनुच्छेद जोड़कर यह बात स्पष्ट की गई है कि केन्द्रीय कानून की वैधता को केवल सर्वोच्च न्यायालय में ही चुनौती दी जा सकती है, अन्यत्र नहीं। इससे पहले केन्द्रीय कानून की समीक्षा उच्च न्यायालय भी कर सकते थे। लेकिन अब यह अधिकार केवल सर्वोच्च न्यायालय के पास रह गया।

अनुच्छेद 137 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को अपने निर्णयों और आदेशों का पुनरावलोकन करने की भी शक्ति प्राप्त है। 43वें संविधान संशोधन द्वारा न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति वापिस उच्च न्यायालयों को भी दे दी गई। इसमें यह बात स्पष्ट कर दी गई उच्च न्यायालय को केन्द्रीय व राज्य के कानूनों की जांच करेंगे, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय को केन्द्रीय व राज्यों दोनों के कानूनों की संवैधानिकता जाँचने का अधिकार होगा।

भारत में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यावहारिकता

भारत में सबसे पहले 1950 के निवारक नजरबन्दी कानून के खण्ड 14 को सर्वोच्न न्यायालय ने अवैध करार दिया। उसके बाद 1947 व 1954 के आयकर अधिनियम की धारा को सर्वोच्च न्यायालय ने अवैध माना। उसके बाद 1951 की मद्रास सरकार की साम्प्रदायिक राज आज्ञा को समानता के सिद्धान्त के विरुद्ध करार दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 19 तथा 31 के विरोधी कई कानूनों को असंवैधानिक माना। बृजभूषण बनाम दिल्ली सरकार के केस में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रैस की स्वतन्त्रता का समर्थन किया। 1967 में गोलकनाथ केस में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संसद को मौलिक अधिकारों में परिवर्तन करने का कोई अधिकार नहीं है। उसके बाद 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण अधिनियम को संविधान के अनुच्छेद 19 तथा 31 का विरोधी करार दिया। 1970 में उसने प्रिवी पर्स तथा अन्य विशेषाधिकारों को समाप्त करने वाले राष्ट्रपति के अध्यादेश को अवैध बताया। 1973 में केशवानन्द भारती के केस में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि संसद मौलिक अधिकारों में कटौती या परिवर्तन कर सकती है, लेकिन संविधान के मूल रूप से छेड़छाड़ नहीं कर

सकती। उसके बाद सर्वोच्च न्यायालय ने 42 वें संशोधन के अधीन संविधान के संशोधित रूप के 31.ब् को भी रद्द कर दिया। 1983 में सर्वोच्च न्यायालय ने फौजदारी कानून की धारा 303 को अवैध घोषित किया। 1991 में सर्वोच्च न्यायालय ने दल-बदल अधिनियम ;52वां संधोधन) को वैध करार दिया तथा राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार को मंडल कमीशन की सिफारिशों को उचित बताया।

इसी तरह सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का अनेक अन्य अवसरों पर भी व्यावहारिक प्रयोग किया है तथा स्वतन्त्रता की रक्षा तथा सामाजिक न्याय की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उसने संविधान के अनुच्छेदों 14ए 19 तथा 31 का उल्लंघन करने वाले सभी कानूनों को अवैध करार देकर स्त्रियों व बच्चों के अधिकारों की रक्षा की है। अछूतों को समाज में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया है तथा संविधान के अनुच्छेदों 20 व 30 की उदारवादी व्याख्या करके अल्पसंख्यकों के हितों का पोषण किया है। लेकिन हाल ही में दिए गए निर्णय में हड़ताल के अधिकार को अवैध घोषित करके जनतांत्रिक आस्थाओं पर करारी चोट भी की है।

भारत में न्यायिक पुनरावलोकन की आलोचनात्मक मूल्यांकन

यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का अच्छे कार्यों के लिए बहुत अधिक प्रयोग किया है, लेकिन कई बार उसने अपनी इस शक्ति का दुरुपयोग करके न्यायिक तानाशाही का भी परिचय दिया है। 1967 के गोलकनाथ मुकद्दमें में वह आलोचना का पात्र बन गया था और लोगों ने तो यहां तक कहना शुरु कर दिया था कि सर्वोच्च न्यायालय कानून का व्याख्याकार न होकर नीति-निर्माता बनता जा रहा है और विधायिका के कार्य भी स्वयं करने लगा है।। वर्ष 2003 में हड़ताल के अधिकार को गैर-कानूनी करार देना सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी तानाशाही का ही परिचय दिया है। आज सर्वोच्च न्यायालय कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिद्धान्त से हटकर कानून की उचित प्रक्रिया के सिद्धान्त की ओर बढ़ रहा है। अब अधिकतर निर्णय न्यायधीशों के सामाजिक-नैतिक दृष्टिकोण पर आधारित होते जा रहे हैं। अपने ही निर्णयों को बार-बार पुनरावलोकन करके सर्वोच्च न्यायालय ने अनिश्चय की स्थिति पैदा कर दी है। हड़ताल के अधिकार को पहले तो उसने सीमित किया था, लेकिन अब समाप्त करके न्यायिक प्रक्रिया के प्रति सन्देह उत्पन्न कर दिया है। बहुमत पर आधारित निर्णयों के कारण आज अल्पमत की उपेक्षा हो रही है। कई बार अधिक महत्वपूर्ण मामलों में भी बहुमत के अभाव के कारण उचित निर्णय नहीं हो पाते। इसी कारण आज न्यायिक पुनरावलोकन को अप्रजातांत्रिक कहा जाने लगा है। इसलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि सर्वोच्च न्यायालय उचित मामलों में ही अपनी इस शक्ति का प्रयोग करे। यद्यपि कई मामलों में सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका सराहनीय रही है। आज उसी भूमिका को बरकरार रखने की महती आवश्यकता है। इसलिए सर्वोच्च न्यायालय को अपनी छवि को संवैधानिक बनाए रखने के लिए ऐसे कदम उठाने चाहिंए जो कार्यपालिका व विधायिका के साथ उसके टकराव को रोककर राजनीतिक विकास के मार्ग पर देश को ले जाने वाला हो।

न्यायिक पुनरावलोकन का महत्व

न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति न्यायपालिका को ऐसा स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान करती है कि वह कार्यपालिका और विधायिका के हस्तक्षेप से मुक्त रहकर नागरिक अधिकारों की रक्षा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। संघात्मक शासन प्रणालियों में जहां शक्तियों का बंटवारा केन्द्र व राज्यों में होता है, वहां पर तो संविधानिक गतिरोध टालने में न्यायपालिका की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती है।

मुनरो का कहना है कि-"यदि अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन प्रचलित न होता तो यहां न जाने कब की अराजकता फैल गई होती।"

इसी प्रकार होम्स ने कहा है-"मेरा निश्चित मत यह है कि यदि सुप्रीम कोर्ट राज्यों द्वारा बनाए गए कानूनों को असंवैधानिक घोषित करने के अधिकार से वंचित हो जाएगा तो हमारा संघ अवश्य खतरे में पड़ जाएगा।"

न्यायपालिका अपनी इसी शक्ति के कारण अमेरिका तथा भारत में विधायिका व कार्यपालिका द्वारा पास किए गए कई असंवैधानिक कानूनों को रद्द कर सकी है। अपनी इसी शक्ति के कारण आज न्यायपालिका संविधान का तीसरा सदन बन चुका है। कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा संविधान के अतिक्रमण को रोकने, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा करने, संविधान को गत्यात्मक बनाने, संविधान की सर्वोच्चता स्थापित करने तथा राजनीतिक व सामाजिक विकास का मार्ग प्रशस्त करने में न्यायिक पुनरावलोकन का बहुत महत्व है।

न्यायिक पुनरावलोकन पर सीमाएं

न्यायपालिका अपनी न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का प्रयोग निर्बाध रूप से नहीं कर सकती। इस शक्ति के प्रयोग पर भी कुछ संविधानिक प्रतिबन्ध हैं जो न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति को मर्यादित करके निरंकुश बनने से रोकते हैं। से सीमाएं हैं :-

1. न्यायपालिका उन्हीं कानूनों को असंविधानिक घोषित कर सकती है जो उनके सामने मुकद्दमों के रूप में आते हैं, अन्य को नहीं।
2. किसी भी कानून को तभी अवैध या असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है, जब कानून की असंवैधानिकता पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाये।
3. इस शक्ति का प्रयोग कानून की उचित प्रक्रिया के तहत ही किया जा सकता है। किसी कानून को अवैध घोषित करते समय न्यायधीशों को व्यक्तिगत राय से बचना पड़ता है। अमेरिका में कानून का ही प्रयोग किया जाता है। यह भी न्यायिक निरंकुशता को रोकने में सहायक होता है।
4. कानून की उन्हीं धाराओं को अवैध घोषित किया जा सकता है जो संविधान के विपरीत हों। इसमें सारे कानून को अवैध नहीं माना जा सकता। समस्त कानून को अवैध घोषित करने के लिए इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि कानून दूसरी धारा के बिना परिभाषित न किया जा सकता हो।
5. राजनीतिक विवादों में न्यायिक पुनरावलोकन का प्रयोग वर्जित है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन के बाद निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि न्यायिक पुनरावलोकन न्यायपालिका के हाथ में ऐसा शस्त्र है जिसका प्रयोग करके वह कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा बनाए गए असंवैधानिक कानूनों को अवैध घोषित करके नागरिक स्वतंत्रता व अधिकारों की रक्षा करती है। भारत में इस शक्ति ने न्यायिक सक्रियतावाद को जन्म दिया है। इसी सक्रियतावाद के कारण आज भारत में न्यायपालिका अपना स्वतन्त्र व निष्पक्ष अस्तित्व बनाए हुए है। आज की परिवर्तनशील परिस्थितियों में सामाजिक न्याय व राजनीतिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में न्यायपालिका का जागरुक होना कार्यपालिका और विधायिका को जन-हित में क्रियाशील बनाता है। किसी सरकार की उत्तमता की कसौटी उत्तम न्याय पद्धति ही होती है। भारत व अमेरिका में कई मामलों में कार्यपालिका व विधायिका द्वारा दिए गए गलत निर्णयों को क्रियान्वित होने से रोककर न्यायपालिका व विधायिका को क्रियाशील बनाकर देश हित में ही कार्य किया है। लेकिन इसके बावजूद भी कई बार न्यायपालिका द्वारा इस शक्ति का दुरुपयोग करने के कारण उसे आलोचना का शिकार होना पड़ा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि न्यायिक पुनरावलोकन का प्रयोग अति महत्वपूर्ण कानूनों के मामलों में ही किया जाए। यदि कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा निर्मित कोई कानून असंवैधानिक है और उससे जन-कल्याण की उपेक्षा होती है तो उसको न्यायपालिका द्वारा अवैध ठहराना पूर्णतया: न्यायसंगत है। अत: न्यायपालिका को जहां तक सम्भव हो अन्य दोनों अंगों के साथ समन्वयकारी नीति के आधार पर ही क्रियाशील होना चाहिए। इसी में उसकी भी भलाई है और देश का विकास भी सम्भव है।